P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-4* December- 2017
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

बेबस आमजन कब तक 'संसद से सड़क तक'

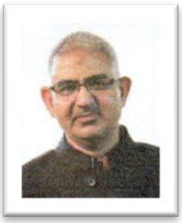

जहाँगीर रहमान कुरैशी
एसोसिएट प्रोफेसर,
वनस्पति विज्ञान,
राजकीय बाँगड़ महाविद्यालय,
डीडवाना, नागौर,
राजस्थान

सारांश

गुलामी के समय की तस्वीर आज भी हमारे मन मस्तिष्क पर गहरे से अपनी पेठ बनाए हुए है, उसमें साफ–साफ दिखाई देता है वो है–सड़कों पर फैली भीड, गरीबी से तिलमिलाई जनता और आजादी पाने की चाह। बस! इससे ज्यादा कुछ नहीं। उस चेहरे में भूख सिर्फ पेट भरने मात्र की नहीं थी, भूख थी आजादी पाने की, भूख थी भूख को हराने की, उसमें संकल्प था आजादी पाने का। आजादी की चाह रखे वो भूखा चेहरा था भारतवर्ष के हर जन का चाहे वो वृद्व हो, युवा हो कि बच्चे। चाहे वो सम्पन्न वर्ग का हो कि निर्धन आमजन का; चाहे वो किसान का हो कि जमींदार का; चाहे वो पुरूष का हो कि नारी का; आमजन ने उस भूख को गोलियों से मिटाना सीख लिया था। सबकी नजरें ब्रिटिशराज के खत्म होने व आजादी की किरण को यथाशीघ्र देखने भर की थी। उनमें आत्मसम्मान, जिद्द, जीतने का संकल्प, मान–मर्यादा पाने का जोश था।

.....................और दूसरी तस्वीर आजादी के बाद की। आज उस पर नजर डालें तो–वही भीड़ संसद से सड़क तक अपनों से, अपना आत्मसम्मान पाने के लिए फैलती हुई मिलती है। वो भीड़ का जोश, वो जज्बा, आत्मसम्मान उनमें से यकायक कहाँ गायब हो गया? उसकी जगह एक लाचार, बेबस लाचारी की भट्टी में झुलसा हुआ आमजन का चेहरा समुद्र की तरह फैलता गया। वर्ग, तबका, क्षेत्रगत, जातिगत कुछ न कुछ मुफ्त योजनाओं के रूप में पाने की चाह में खड़ा होता गया। आजादी से मोह भंग हुआ और मुफ्त पाने की चाह का बीज आमजन में फैलाने वालों और आमजन को दिशाहीन रास्ते बताने वालों का एक सैलाब सा देश में व्याप्त हो गया। आजादी और आमजन के बीच प्रलोभनकारी योजनाओं के जाल में फंसकर आमजन का आत्मसम्मान कहीं भीड़ में गिर गया। धूमिल जैसे कवि भीड में से इसी आत्मसम्मान को वापस उठाकर यह कहते हुए लौटाने का प्रयास करते हैं– **कि लो भई! यह तुम्हारा चेहरा जुलूस़ में पीछे कहीं गिर गया था।** सवाल खड़ा होता है आजादी के पूर्व हमारा मिशन था आजाद भारत और आजादी के बाद बदलते परिवेश में भारतीयता की तलाश। यह तलाश अब भी कविता के संदर्भ में जारी है क्यों? कविता के माध्यम से भीड़ की पहचान बनाने का प्रयास व उसका आत्मसम्मान खोजकर संसद से सड़क तक धूमिल व अन्य कवियों ने किया वो अपने आप में अपनी अमिट छाप रखता है।

मुख्य शब्द : आजादी, कविता, मोहभंग, धूमिल।

प्रस्तावना

आजादी के पहले और बाद की कविता का आकलन करने पर हम पाते हैं कि स्वतन्त्रता संग्राम रूपी यज्ञ की अग्नि को बहुत से कवियों ने न सिर्फ अपनी काव्य–समिधा प्रदान की, बल्कि बर्बर, क्रूर शासन की अनेकानेक यातनाओं से रू–ब–रू हुए। कई कवि महाशयों ने तो आत्मबलिदान देकर आजादी की पताका में रंग भरने में पीछे नहीं हटे। कवियों ने कविता गीत, गजलों, प्रभातफेरियों आदि से जनमानस को उद्वेलित और प्रेरित किया जब देशभक्त दीवाने गुलामी की जंजीर तोड़ने को जूझ रहे थे। स्वतन्त्रता के पूर्व जहाँ देशभर में कवि आजादी के आह्वान और उसकी अगवानी के लिए समर्पित, व्यग्र उदग्र रहे और देशभक्ति ही कविता का प्रमुख उद्देश्य, लक्ष्य रही तथा जहाँ कविता में राष्ट्रप्रेम व राष्ट्र माहात्म्य चर्चा का शंखनाद ही बहुधा गुंजायमान रहा। आजादी के कुछ समय पश्चात् कविता का विस्तार हुआ और यंत्रणाएं झेलकर भारी त्याग बलिदान से मिली आजादी को बचाये रखने एवं आमजन को स्वातन्त्र्य सुख–समृद्धि में शामिल करने की आकांक्षा बाद की कविता में जगह पाने लगी, जो समय की आवश्यकता भी थी।

आजादी के बाद की कविता की भाषा–मुद्रा कई मायनों में अचरज युक्त है। वे अपनी मुंहफट बेबाक जुबान में व्यवस्था को चींथती और बेपर्द करती है। वह आज कुछ भी कहने से चूकती नहीं है सीधा मनुष्य जिन्दगी से साक्षात्कार करती है और जिन्दगी से जुड़े अनेक सवालों का वाजिब जवाब ढूंढ़ने के क्रम में काफी बोल्ड और साहसी नजर आती है। इसी वजह से कविता का चौखटा टूटा और लम्बी कविता का रचना विधान सामने आया। मोहभंग की इन परिस्थितियों में काव्य जगत के शलाका पुरूष व युवा कवि **सुदामा पाण्डेय 'धूमिल'** ने समकालीन परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण सरल व सहजगम्य भाषा में प्रस्तुत किया। कविता को संसद से सड़क तक सक्रिय किया।

अध्ययन का उद्देश्य

भारतीय भाषाओं के साहित्य और विशेषकर काव्य की बात करें तो देश की आजादी से पहले व आजादी के बाद की अभिव्यक्ति में स्पष्ट भेदक–रेखा दिखाई देती है अर्थात् आजादी से पहले व बाद की कविताओं में अमूलचूल परिवर्तन देखने को मिलता है। आजादी से पहले, वो जोश उत्साह से गुलामी की दास्तां को बदलने का प्रयास करती नजर आती है वहीं बाद की कविता में मोहभंग की स्थिति साफ साफ दिखाई देती है। आजादी के बाद प्रत्येक व्यक्ति की यह आशा थी कि आजादी मिलने से ही हमारी सभी समस्याओं का समाधान हो जायेगा, कुछ समय पश्चात् ही समकालीन परिस्थितियों के कारण आजादी का मिथक टूट गया। जिस आशा और आतुर आकांक्षा को भारतीय मनीषा ने अपनी आंखों में सपनों की तरह पाला–पोसा वे पूरे नहीं हुए। दुर्भाग्य रहा कि लोकतंत्र की कल्याणकारी अवधारणा को जनतंत्र में न तो व्यवस्था इसका सही–सही भाव, स्वरूप और मंशा समझ पाई और न ही आम जनता।

समकालीन कवियों ने जब इसी मोहभंग को कविता के जरीये उसमें नई ऊर्जा व उष्मा भरने का काम किया। कविता सामाजिक परिवर्तन की वांछा में अन्तर्विरोध से गुजरती हुई आम आदमी की बहुत हद तक करीब हुई और वे आजादी का अर्थ यह कहकर खोजती है – **"भूखे आदमी का सबसे बड़ा तर्क रोटी है।"**

लोक एवं तन्त्र के बीच मेकेनिज्म के बिगड़ने की गवाही साफ साफ आमजन की रोजमर्रा जिन्दगी में नजर आई तब साहित्य ने मोर्चा संभाला। अपनी अभिव्यक्ति को इस प्रकार प्रचारित प्रसारित किया कि यह अपनी आवाज को संसद से सड़क तक ले जाने में सफल हुए। लोक एवं तन्त्र के बीच व्यवहार में भटकाव की इन्हीं परिस्थितियों की आवाज को एक बार फिर गुंजायमान करने, आजादी के बाद आमजन की महत्वकांक्षा और उसके सपनों के एकदम धराशाही होने व मोहभंग की स्थिति का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से तथ्यपरक अध्ययन करके साहित्य के मानक मूल्यों की स्थापना व हिन्दी साहित्य सम्बन्धी ज्ञान के क्षेत्र में विधिवत अभिवृद्धि हो इसी उद्देश्यपरक योजना को देश की आजादी से पहले व आजादी के बाद की अभिव्यक्ति में कविता का आमजन के साथ घटित व्यवहार को साहित्य जगत से रू–ब–रू करवाने के लिए प्रयास मात्र किया गया है, जो पाटक पाठक के समक्ष प्रस्तुत है।

साहित्यावलोकन

आजादी के पूर्ववर्ती एवं पश्चातवर्ती साहित्य, विशेषकर काव्य में आमजन की आशा, अपेक्षा एवं अभीप्साओं के साथ ही निराशा, हताशा, लाचारी एवं बेबशी को भी बराबर स्वर मिला है। इससे संबद्ध साहित्य का सर्वेक्षण करें तो एक लंबी सूची उपलब्ध है। जिसमें 1936 में प्रगतिशील लेखकसंघ की स्थापना, तारसप्तकों का प्रकाशन। (प्रथम 1945; द्वितीय 1951; तृतीय 1959), 1953 में नई कविता, 1956 में नकेन का प्रपद्यवाद आदि को प्रमुख माना जा सकता है। हंस, पहल, आलोचना आदि पत्रिकाओं का प्रकाशन भी इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कड़ी है।

1960 में इन्द्रनाथ मदान की 'आधुनिक कविता का मूल्यांकन', 1979 में गणेश तुलसी राम अष्टेर कृत 'कटघरे का कवि धूमिल', 2000 में धर्मपाल पीहल की 'धूमिल के काव्य का सामाजिक संदर्भ', 1977 में नरेन्द्र मोहन की 'लम्बी कविताओं का रचना विधान', 1987 में मदन गुलाटी की 'समकालीन कविता का परिप्रेक्ष्य', 1990 में कामेश्वर प्रसाद सिंह की 'समकालीन हिन्दी कविता का संघर्ष', सजीला एन.आर. द्वारा धूमिल की कविता–भारतीय सामाजिक राजनीतिक संदर्भ में 2004, अन्तराम बंजारा द्वारा 'स्वातंत्रयोत्तर राजनीतिक हिन्दी कविता के परिप्रेक्ष्य' में धूमिल की कविता का अनुशीलन' 1984, जयपाल द्वारा 'धूमिल की कविता में मोहभंग और विकल्प' 2005, कृष्ण बलदेवा सिंह राठौड़ द्वारा 'धूमिल की कविता और परवर्ती हिन्दी कविता पर उसका प्रभाव' 2016, सुरेश कुमार शर्मा द्वारा 'साठोत्तरी हिन्दी कविता' 1983 आदि उपयोगी ग्रंथ हैं।

आजादी के पूर्व एवं पश्चवर्ती काव्य में यद्यपि आमजन को प्रसंगवश स्थान मिला है लेकिन समग्र रूप से आमजन की बेबशी एवं लाचारी को कवियों की अनुभवी आंखों ने किन–किन रूपों में देखा तथा उसको किन प्रतीकों एवं बिंबों के माध्यम से अभिव्यक्त किया, उसे विश्लेषित करना इस आलेख का उद्देश्य रहा है। इस शोध आलेख में आमजन की पीड़ा को पहचान देने वाले अनेक रचनाकारों की रचनाओं एवं आलोचकों की टिप्पणियों को प्रसंगानुसार उद्धृत किया गया है।

आजादी के बाद कविता एवं आमजन

प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता, अकविता आधुनिकतावादी और नव्यप्रगतिवादी कविता से होते हुए आज की कविता तक पहुँचने के लिए आजादी की बाद की कविता ने एक लम्बा सफर तय किया है। समकालीन कविता, साठोत्तरी कविता के दौर में अज्ञेय, मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय, शमशेर, नागार्जुन ,केदार त्रिलोचन, राजकमल चौधरी, धूमिल लीलाधर जगुड़ी की काव्य साधना ने संसदीय मुद्दों, आमजन को केन्द्र में रखकर, लोकतन्त्र से सवाल करते हुए संसद को मौन स्वीकृति बतलाया।

रघुवीर सहाय कृत **'आत्महत्या के विरूद्व'** धूमिल की **'संसद से सड़क तक, प्रफुल्ल कोलख्यान** कृत **मंजी हुई शर्म का जनतन्त्र** आदि का उल्लेख करना नयायोचित

ही होगा जिनकी कलम की धार ने जनपक्षधरता का खुला समर्थन किया। घूमिल की कृतियों में अपने कविता मुहावरे को तोड़ने एवं वर्जित शब्दावली का प्रयोग बेझिझक करने में इस तरह सामने आया जैसे कोई धूमकेतु हो। उसका मानना था कि कविता में चौंकने–चौंकाने की बात ही न हो, सामान्य अभ्यास हो। परिस्थितियों को सही सही सामने लाने का ईमानदारी से जोखिम उठाया और कुछ हद तक सफल रहा। धूमिल के अनुसार इस दौर में **सवाल यह नहीं है कि आपने किस तरह कहा है, सवाल यह है कि आपने क्या कहा है।** (कविता पर एक वक्तव्य–धूमिल, नया प्रतीक–78 पृष्ठ 5)। धूमिल ने अपने समय की विसंगतियों को तेज छूरी जैसी भाषा दी। यहाँ धूमिल के लिए इतना कहना तो उचित ही होगा कि उसने इतना भर जोखिम तो उठाया ही कि **'खरबूजे को खरबूजा और चाकू को चाकू'** कहा।

समकालीन हिन्दी साहित्य की कथ्य यर्थाथ पर आधारित है उसमें सामाजिक सरोकारों एवं बदलाव स्पष्ट है इसकी प्रस्तुति में तीखापन एवं आक्रोश है। यह सारी विशेषताएं हमें धूमिल के काव्य में मिलती है। धूमिल ने अपने काव्य के माध्यम से राजनीतिक बदलाव व सामाजिक यर्थाथ, परम्परा एवं आधुनिक बोध के प्रति अपने निजी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है।[11]

समकालीन हिन्दी कविता ने धूमिल की रचनात्मकता को सर्वथा नवीन आयाम प्रदान किया है तथा धूमिल ने इस कविता धारा को नई अर्थवत्ता व विस्तारता दी।[12] अपने खास चहेते व्यक्तित्व के बताये दिशाहीन रास्तों में उलझा आमजन उनकी सम्मोहित बुद्वि में फंसकर अपनी लाचारी को केवल और केवल नियति मान जीने की आस पाले हैं। उनके लिए आजादी के मायने क्या है? यह सवाल कई बार धूमिल ने अपनी कविता में किया है। **धूमिल** के शब्दों में–

भीड़ बढ़ती रही
चौरास्ते चौड़े होते रहे।
लोग अपने–अपने हिस्से का अनाज
खाकर–निरापद भाव से
बच्चे जनते रहे।[1]

गरीब की आकांक्षाएं, मन मारकर लोकतन्त्र में अपने खून पसीने और आँसुओं की स्याही एक बार फिर उपलब्ध कराकर कुछ परिवर्तन के संकेत पाने के लिए तरसती रही। नतीजा यह हुआ कि संसद से सड़क तक हंगामा यूं ही बरबस बढ़ता गया और **धूमिल** के शब्दों में आमजन अपनी ऊर्जा, हौसला, जोश नेताओं की चौखट पर गिरवी रखकर कुछ पाने की चाह में **नेकर के नाड़े सी लार** टपकाते सड़कों पर फैल गया। विचारणीय तथ्य है कि जो आजादी हमारा अधिकार थी वो जब हमें मुफ्त नहीं मिली तो फिर क्योंकर गरीबी की चक्की में पिसता आमजन उन सब चीजों को मुफ्त में पाने का सपना देखने पर आमादा हो गया? जिनकी मांग और मूल्य हमारे जीवन से सीधे साक्षात्कार करते हैं। जहाँ जल के उपयोग और उपभोग पर सम्पूर्ण विश्व चिन्ता में डूबा है तीसरे विश्वयुद्व की चोखट पर खड़ा जल विश्व के लिए चुनौती सा दीख रहा है। ऊर्जा बिजली देश के विकास की धूरी है उसका निर्माण व उपयोग जहाँ देश के लिए बहुत बड़ी समस्या है। देश का आमजन उन्हीं बिजली पानी को मुफ्त पाने की लालसा करने लगा। इससे बढ़कर कि मुफ्त बिजली पानी गरीब तक पहुँचाने की होड़ वोट पाने का जुगाड़ बन नेताओं को संसद का मार्ग दिखाती नजर आ रही है तो फिर क्योंकर आमजन संसद से सड़क तक मुफ्त पाने की चाह में फैलना नहीं चाहेगा। भले ही धोखा हो, छलावा हो उसको आदत पड़ चुकी है। हम जीत रहे हैं कि हार रहे हैं अपने ही देश में अपनों से कि, अपने आप से सोचना पड़ेगा लेकिन कब.....?

आजादी के बाद जब आशा–दर्पण अपना टूटा सा अक्स दिखाने लगा, सपनों का अंकुर मुरझाने सा लगा, प्रतिज्ञाएं भंग होने लगी और आमजन के पास झूठे (मिथ्या) आश्वासनों के पुलिन्दे के अतिरिक्त उसके हिस्से में कुछ न बचा, कहने का आशय है कि आमजन की आस्था खण्ड–खण्ड होने के कगार पर जा पहुँची तो **दिनकर जी** ने अपनी कविता में सवाल किया–

कुंकुंम ?लेपूं किसे? सुनाऊं किसे कोमल गान?
तड़फ रहा आँखों के आगे भूखा हिन्दुस्तान। [9]

जनकवि, राष्ट्रकवि, शब्दों का सूरज नाम से प्रसिद्ध कवि रामधारी सिंह दिनकर की उक्तांकित पंक्तियां मन को आंदोलित करते हुए अपनी गूंज सालों से बनाये हुए अनवरत हमको झंकझोर रही हैं। समय भले ही बदल गया हो लेकिन परिस्थितियां अभी भी वैसी ही है। इसी दर्द को **दुष्यंत कुमार** अपनी वाणी प्रदान करता है और आमजन के दर्द को देश के सामने बहुत सहज भाव से रखने में सफल रहें हैं–

कहाँ तो तय था चरागां हर घर के लिए
कहाँ चराग मयस्सर नहीं शहर के लिए [7]

नई कविता, नया शिल्प एवं नई कल्पना ही नहीं **नये मनुष्य** की अवधारणा के साथ अवतरित हुई जिसका सम्बन्ध आजादी के बाद के नए यथार्थों से रहा। साठोत्तरी कविता के दौर में व्यवस्था का उग्र विरोध खुद काव्यात्मक के विरोध की तरफ भी बढ़ा। इस समय में इतिहास और समाज के साथ ही विचारधारा का जमकर विरोध हुआ। उस जमाने के कवियों के लिए जिन्दगी की सारी चीजे बदरूप एवं खुरदरी सी हो चुकी थी। मानवीय संबन्धों की तार्किकता समाप्तप्राय हो गई थी। पश्चिमी साहित्यिक आंदोलनों के असर एवं देश में पूँजीवाद की चरम पतनशीलता से कवियों में निराशा, विच्छिन्नता तथा निस्सहायता का अनुभव होने लगा। **राजकमल चौधरी** और उनकी अराजक साहित्यिक पीढ़ी इस बात की गवाह है इसलिए ही तो **धूमिल**, **नागार्जुन** जैसे कवियों ने उन्हें भद्र वर्ग की माफिक तिरस्कार की नजर से नहीं देखा। उस जमाने के कविता संसार में व्यवस्था–विरोधी गुस्से की अनुपम लहरें थी।

कविता में भूख संत्रास शोषण विषय बन चुके थे ऐसे में एक जनकवि ऐसा चाहिए था जो आम आदमी के दिलो दिमाग में पैठ सके, गरीबी की बदबू सूंघ सके। ऐसा जनकवि **'नागार्जुन'** का कविता के क्षेत्र में आन्दोलनकारी कदम था। कविता अब जनकविता बन चुकी थी और नागार्जुन जनकवि। कविता ने सर्वहारा के प्रति गहरी संवेदनाएं दिखलाई। नागार्जुन की नजर में

तत्कालिक मूल्यों को अनदेखा नहीं किया जा सकता। **'प्रेत का ब्यान'** नामक कविता में वो लिखते हैं–

ओ रे प्रेत
कड़क कर बोले नरक के यमराज
सच –सच बतला! कैसे मरा तूं?
भूख से,
अकाल से?[10]

अकाल से पीड़ित आमजन को नागार्जुन ने अपनी कविता में इस कद्र जगह दी कि आदमी के इतने करीब कविता को ले गये जहाँ संभव नहीं था अन्यों के लिए। उनकी एक अत्यंत प्रसिद्ध कविता **'अकाल और उसके बाद'** लोकप्रियता और कलात्मक सौन्दर्य का उल्लेखनीय उदाहरण है।

कई दिनों तक चूल्हा रोया चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास।
कई दिनों तक भीतों पर .... [10]

नागार्जुन की कविताओं की तात्कालिकता में ही उनके कालजयी होने का राज छिपा है और वो राज यह है कि तात्कालिकता को ही उन कविताओं में रचनात्मकता का हथियार बनाया गया है। जैसे कि–**"इंदू जी, इंदू जी क्या हुआ आपको";"आओ रानी, हम ढोएंगे पालकी"; "अब बंद करो हे देवी यह चुनाव का प्रहसन"।**

आजादी के बाद देश में नये वातावरण के बन जाने के बाद कविता ने भी अपनी रचनाओं में (मेरी मान्यता है कि कविता को कोई लिखता नहीं वो स्वयं अपने को लिखती है) सबसे अधिक आक्रामक तेवर संसद और लोकतन्त्र पर ही केन्द्रित किये क्योंकि कुछ मिलने की आस यहीं से शुरू होती है एवं यहीं पर खत्म। सबसे बड़े लोकतन्त्र एवं देश के संचालन का भार संसद के हाथों में है तो फिर देश की दयनीय अवस्था में त्रस्त जनता जाए तो आखिर जाए कहाँ?

आजादी के बाद हिन्दी कविता में स्वायत्तता व समग्रता के बीच एक खींचतान तो नजर आती है। **धूमिल** ने व्यंग्य के माध्यम से अपनी मुखर प्रखर वाणी से जब **'संसद से सड़क तक'** आमजन तक पहुँचाई तब देश सोचने पर मजबूर हुआ। परेशान हाल आमजन की वाणी को शब्द देते हुए धूमिल लिखता है–

अपने यहाँ संसद–
तेली की वो घानी है
जिसमें आधा तेल है
और आधा पानी है[1]

धूमिल की राजनीतिक चेतना स्वतन्त्रायोत्तर भारत की दशा पर चिंतन से उपजती है। व्यवस्था से उपजे नैराश्य एवं जनतंत्र की असफलता कवि को व्यथित करती है प्रजातांत्रिक मूल्यों की पुर्नस्थापना के लिए युवा वर्ग से क्रान्ति द्वारा बदलाव के लिए आह्वान करतर है।[12] धूमिल परिस्थितियों को सबके सामने रखते हुए आमजन एवं संसद के बीच फंसे उस तीसरे आदमी की तलाश करते हुए आगे एक और सीधा सच्चा ज्वलन्त सवाल करता है–

एक तीसरा आदमी भी है
जो न रोटी बेलता है
न रोटी खाता है
वो सिर्फ रोटी से खेलता है
ये तीसरा आदमी कौन है?
मेरे देश की संसद मौन है।[2]

धूमिल के इस तीसरे आदमी की तलाश में हर आदमी मरम्मत के लिए अपना जूता लिए सामने खड़ा है। शायद यही कारण है कि कवि को लगता है कि तीन रंगों का भार ढो रहा पहिया अपनी भाषा में भदेश है और इतना कायर है कि उत्तर प्रदेश है। **धूमिल** के काव्य संग्रह **'सुदामा पाण्डे का प्रजातन्त्र'** में भी यह प्रहार और अधिक तीव्रता लिए है जैसे–

यहाँ न कोई प्रजा है
न कोई तन्त्र है
ये आदमी के खिलाफ
आदमी का खुला सा षड़यन्त्र है।[3]

भारतीय स्वतन्त्रता के **'बीस साल बाद'** नामक कविता में एक सार्थक प्रश्न सम्पूर्ण मानवीयता के साथ सौन्दर्य–बोध चेतना से पूछा गया है जो कि भारतीयों के व्यक्ति–स्वातन्त्र्य का प्रश्न था–

बीस साल बाद
मैं आपसे एक सवाल करता हूँ
जानवर बनने के लिए
कितने सब्र की जरूरत होती है।[1]

आजादी आधुनिक भारतीय जीवन में समता, समरसता, सामाजिक बहुलात्मकता की रक्षा की आधारभूमि बनकर आई थी। इस आधारभूमि में भयानक कटाव हुआ। कटाव ऐसा कि **रघुवीर सहाय** की **'आत्महत्या के विरूद्ध'** नामक कविता में इस प्रकार पाते हैं–

एक पूरी पीढ़ी जनमी
पली पुसी क्लेश में
बेगाना हो गयी
अपने ही देश में।[8]

डॉ॰ नवाब सिंह द्वारा रघुवीर सहाय पर लिखित एक लेख में लेखक लिखता है कि रघुवीर सहाय ने मध्यवर्गीय समाज को यह अहसास दिलाया कि अकेले अकेले रहकर हर कोई अधिनायकवादी ताकतों के हाथों मारा जायेगा। अधिनायकवादी ताकतों के खिलाफ अगर संगठित नहीं होंगे तो हर **"रामदास की हत्या"** होगी

"खड़ा हुआ वह बीच सड़क पर
दोनों हाथ पेट पर रखकर
सधे कदम रख करके आये
लोग सिमट कर आँख गड़ाये
लगे देखने उसको जिसकी तय था हत्या होगी।"

मुक्तिबोध की **'अंधेरे में'** नामक कविता में हमारी सम्पूर्ण समस्या का महाव्याख्यान इस तरह हुआ –

दुनिया न कचरे का ढेर कि जिस पर
दानों को चुगने चढ़ा कोई भी कुक्कुट
कोई भी मुरग़ा
यदि बाँग दे उठे ज़ोरदार
बन जाए मसीहा"[5]

आज के कवियों ने सबसे अधिक अपनी रचनाओं में संसद और लोकतंत्र पर आक्रमण किया है। इतने बड़े देश का भार संसद सदस्यों के हाथ में ही है। युवा कवि **प्रफुल्ल कोलख्यान** के शब्दबाण देश की संसद और

जनतन्त्र के पक्ष में खड़े नहीं मिलते हैं। शायद इसलिए अत्यन्त सजग होकर ही उन्होंने अपनी कविता संकलन को नाम दिया **'मंजी हुई शर्म का जनतन्त्र'** (1997) इनकी कविता की कुछ पंक्तियां इस बात की गवाह है–

मरहम से अब काम न होगा
घाव बहुत ही गहरा है
और संसद
है वो चंबल
जिसमें इस देश के
जनतन्त्र का सपना
हार चुका है दंगल[6]

और.........देश की दयनीय से अवस्था से परेशान जनता जाएं तो अखिर जाएं? जनता की स्थिति को युवा कवि प्रफुल्ल कोलख्यान के द्वारा इस प्रकार व्यक्त किया गया है–

मेरे चारों ओर क्या है?
एक चुप
और यह चला हुआ अँधेरा
और ये दोनों है मेरे वजूद की शिनाख्त
बरसों साथ रहते रहते अब
अँधेरा भी परिचित हो गया है।[6]

निष्कर्ष

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि आजादी के बाद देश का परिदृश्य बदला उसने हमारे देशी चरित्र की कमजोरियों को भी उजागर किया। जिनके कारण ही इस देश को एक हजार साल से अधिक गुलामी का जीवन भोगना पड़ा उससे मुक्ति तो हमें आजादी के बाद भी नसीब नहीं हुई। राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन ने हमें गुलामी से तो मुक्त करा दिया लेकिन हमें अपनी कमजोरियों से कौन मुक्त करता? विख्यात समाजशास्त्री **श्यामाचरण दुबे** ने इस संकट को समझकर ही कहा था कि–'स्वाधीनता के बाद देश में एक सांस्कृतिक अराजकता व्याप्त हो गई है। स्वदेश और स्वदेशी भावनाएँ अशक्त होती जा रही है। संस्कृति आज की दुनिया में एक राजनीतिक अस्त्र के रूप में उभर रही है, न्यस्त स्वार्थ, जिसका उपयोग खुलकर अपने उद्देश्यों के लिए कर रहें हैं। उन पर रोक लग सकती है, यदि हम निष्ठा और प्रतिबद्वता से भारतीयता की तलाश करें।'

पं. माखनलाल चतुर्वेदी ने आजादी के बाद के भारतीय समाज की इन्हीं प्रवृत्तियों की पहचान करते हुए कितनी पीड़ा भरे अर्थ में कहा था कि– **कितने संकट के दिन है ये। व्यक्ति ऐसे चौराहे पर खड़ा है जहाँ भूख की बाजार दर बढ़ गई है और पाई हुई स्वतंत्रता की बाजार दर घट् गई है। पेट पर ह्रदय एवं सिर रखकर चलने वाला भारतीय मानव ह्रदय एवं सिर पर पेट रखकर चल रहा है। खाद्य पदार्थों की दर बढ़ी हुई है और चरित्र की बाजार दर गिर गई है।** यह आंकलन उस कवि का है जिसे हम **एक भारतीय आत्मा** के नाम से जानते पहचानते और आदर देते है। उनकी बात पर बिना मलाल किये कि उनकी पीड़ा हमारी आँखें खोल देने के लिए हमें झिंझोड़ने के लिए व्याकुल होती रही और हम अपने न्यस्त स्वार्थों में सब कुछ खोकर, बेचकर रातों–रात ख्याति, अमीरी, सत्ता और संसाधन जुटाने के लिए अंतहीन भीड़ का हिस्सा बनते गए। असली बातें खो गई, नकली चीजों से बाजार भर गए। राज बदला राज करने का तरीका नहीं। जो वास्तविक हकदार थे वो हासिये पर कर दिए गये और नहीं थे वो सत्ता पर काबिज होने में सफल रहे शायद इसी लिए **दिनकर** जी ने आवाज लगाई थी कि **"सिंहासन खाली करो कि जनता आती है"** **दुष्यंत कुमार** ने बड़ी व्यंग्यात्मक पीड़ा से कहा था–

दुकानदार तो मेले में लुट गए यारों!
तमाशबीन दुकानें लगाके बैठ गए।[7]

आजादी के बाद की कविताओं में धूमिल की कविताओं को पढते हुए ऐसा अनुभव होता है कि मानो कवि हाथ पकड़कर कह रहा है।– **लो, यह रहा तुम्हारा चेहरा, यह जुलूस के पीछे गिर पड़ा था।** और अन्त में जब कवि यह कहता है तो यकीनन् आमजन को सोचने पर मजबूर होना ही पड़ा कि आजादी के बाद भी ऐसा लगता है कि–

घृणा में
डूबा सारा का सारा देश
पहले की तरह आज भी
मेरा कारागार है।[1]

साहित्य समाज का दर्पण होता है। जीवन की कथा एवं व्यथा को समाज के सामने रखने के विभिन्न आयामों में साहित्य एक सशक्त माध्यम रहा है। साहित्य के विभिन स्वरूप यथा उपन्यास, कहानी, नाटक, लेख–आलेख और कविता में जब साहित्य रचनाधर्मी अपनी ईमानदारी के साथ अपने पात्र को समाज के सामने रखने का प्रयास करता है तब वो साहित्य और मानव जीवन की ऊँचाइयों तक जाता है। समय गवाह है कि साहित्य सर्जन के लिए कलम की आवाज व धार, तलवार से ज्यादा तेज रही है। साहित्यकारों ने जब कामायनी से लेकर दामिनी तक दुधवा से लेकर बुधवा तक की जब–जब बात समाज के सामने यथोचित रूप से रखी है उसकी जीत हुई है। यहाँ इतना कहना सार्थक ही होगा कि काव्य/कविता माध्यम ने आमजन के जीवन को समाज के सामने रखने में अपना बेशकीमती योगदान दिया है। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर की ललकार '**सिंहासन खाली करो कि जनता आती है**' की आवाज अभी भी अपनी गूंज बनाए हुए है। छविनाथ मिश्र ने कविता को क्या खूब उपमा से नवाजा है उनकी निम्नांकित पंक्तियां कविता की कहानी और समाज निर्माण में उसके योगदान को कितना ईमानदारी से व्यक्त करती है–

मेरे दोस्त मेरे हमदम!
तुम्हारी कसम
कविता जब किसी के पक्ष में
या किसी के खिलाफ
अपनी पूरी अस्मिता के साथ खड़ी होती है
तब वह
ईश्वर से भी बड़ी होती है।

यह ठीक बात है कि हम अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करवाने के लिए मजबूरीवश कि मंजूरीवश देश में दो जगह अपना सब कुछ खोजने का जतन करते हैं– एक है संसद और दूसरा हमारा लोकतन्त्र। आजादी के

बाद संसद हमें मिल चुकी थी तथा हमने जनता का, जनता के लिए, जनता के द्वारा अर्थात संविधान का निर्माण किया जो हमारे लिए आजादी के बाद का सबसे बड़ा दस्तावेज है। देश का संविधान जहाँ हमें सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक आजादी एवं जीवन को सही तरीके से जीने के लिए अधिकार प्रदत्त करता है वहीं हमें वो कर्त्तव्यों से भी रू–ब–रू भी करवाता है। शायद यहीं चूक हो रही है। केवल अधिकार पाने की मजुंषा पाले इधर–उधर भटक रहे और भटकाये जा रहें है और नाना प्रकार के विचलन की गिरफ्त में आ खड़े हुए हैं। आमजन की सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक स्थिति का आकलन करें तो पाते हैं कि हम बद से बदतर स्थिति की और जाते नजर आ रहें हैं। धूमिल के शब्दों में टोपियां बदली है आमजन की जिन्दगी में कोई बड़ा अन्तर नहीं आया। वो आज भी मुफ्त योजना प्राप्त करने की कोशिश के लिए जैसे तैसे खड़ा हो गया है या होने की जुगाड़ में व शाम को रोटी मिल जाये की प्रार्थना करते हुए नेताओं के सामने हाथ जोड़े हुए खड़ा है। राजा महाराजा के समय की **फेमिन/अकाल राहत** का यह वैज्ञानिक विकसित रूप मात्र ही तो है। आमजन आज भूखा चेहरा लिए सोता है गरीबी को बिछाकर और बेबसी को औढ़कर और फिर कल नहीं तो आज रोटी मिल जाएगी कि आशा लिए फिर उठ/खड़ा हो जाता है स्वार्थपरक राजनीति की चौखट पर। धूमिल की काव्य य़ात्रा की सार्थकता यहाँ सबके लिए एक नई वाणी लिए है कि **घृणा में डूबा सारा का सारा देश पहले की तरह आज भी मेरा कारागार है।** जिस आजादी को आजाद जीवन के लिए पाया था वो आज भी भूखमरी, भ्रष्टाचार, जातीय जहर, गरीबी अशिक्षा, मुफ्त पाने की बढ़ती मानसिकता, ऋण माफी योजनाओं और स्वार्थपरक राजनीति की गिरफ्त में है जिससे आम आदमी हताश, निराश बेबस संसद से सड़क तक अपनों से अपना हक मांगता हुआ परेशान सा भटक रहा है।

यहाँ इतना तो कहना यथोचित होगा कि हम भी अपने सिद्धान्तों से लड़खड़ा गये हैं हम क्यों भूल रहे हैं कि जो आजादी हमारा अधिकार थी, वो जब हमें मुफ्त नहीं मिली तो फिर क्योंकर आमजन उन सब चीजों को मुफ्त में पाने का सपना देखने पर आमादा हो गया? आजादी के बाद का कविता साहित्य भी अपने मुश्किल दौर से गुजरते हुए थोड़ा बहुत चुका है। क्या कारण है कि आजादी के तराने रचते और गाते हुए अंग्रेजों को देश छोड़ने पर मजबूर करने वाला भारतीय मानस साहित्य आजादी के सत्तर साल बाद, एक भी कालजयी रचना पर अपने हस्ताक्षर करने में सफल नहीं रहा है। क्या यूं कहना उचित ही है कि आजादी के बाद भी हम कविता को पूर्ण आजादी दिलाने में या उसकी आजादी को बरकरार रखने में सफल नहीं हो पाये हैं। आज जरूरत है कि भारतीय मानस पटल पर फिर से साहित्य अपनी छाप छोड़ने का भरसक प्रयास करें और वो चूके नहीं चूकने से बचाये भी। आमजन हताशा निराशा और मुफ्त योजनाओं को पाने की चाह से उभरे और संसद की ओर जाने वाली सड़क पर खड़ा यह कहते हुए मिले कि हाँ यह वही संसद की सड़क है जिस पर आमजन के लिए आजादी से विचरण करने, चलने, जाने के लिए, धूमिल जैसे कवियों की काव्य यात्रा ने ही इसे खाली करवाया है और लिखने पर मजबूर कर दें कि– **संसद की यह सड़क आम रास्ता** है।

कहने का तात्पर्य है कि नेता भूख और लूट का खेल बंद करें। वोट और नोट के तमाशों पर अंकुश लगे। बेकारी फैलाने वाली, प्रलोभनकारी षड़यन्त्रकारी योजनाओं पर एकदम लगाम लगे तथा जनता की भागीदारी सत्ता में बढ़े इसके सार्थक प्रयास हो जिससे आमजन के साथ अन्यायपूर्ण रवैया खत्म करें। सरकार, नेता व आमजन को वोट की नहीं देश की चिन्ता करनी होगी। नागरिकों के शिक्षा और स्वास्थ्य की गारन्टी सरकार पक्ष बने। नागरिकों अधिकारों में मोलतोल की सियायत खत्म हो। बढ़ती जनसंख्या को नियंत्रण करने की ओर सार्थक कदम बढ़ाएं। देश प्रतिवर्ष अपने अन्दर एक ऑस्ट्रेलिया जोड़ रहा है और हम मंगलगान कर रहे हैं। मेरा मानना साफ है कि आम नागरिक की रुचि उसके जीवन से सीधे साक्षात्कार करती परेशानियों को पहले दर्जे पर रख कर चलें तभी हम अपने सपनों का भारत बना पाएंगे और संसद की सड़क पर लिख पाएंगे– **संसद आम जनता के लिए है और उस ओर जाने वाली सड़क भी आम जनता के लिए है।**

अज्ञात कवि की पंक्तियों से अपनी कलम को कल के सुन्दरत्तम सपनों की आशा में विराम देना चाहता हूँ–

ये कौन झांकता है किवाड़ों की ओट से
बत्ती बुझा के देख सवेरा न हो कहीं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *धूमिल का प्रथम काव्य संग्रह 'संसद से सड़क तक' प्रकाशक राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली। 1972, 2014*
2. *धूमिल का दूसरा काव्य संग्रह 'कल सुनना मुझे' प्रकाशक– वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली। 1977*
3. *धूमिल का तीसरा काव्य संग्रह 'सुदामा पाण्डेय का प्रजातन्त्र' प्रकाशक–वाणी प्रकाशन, 61–एफ कमलानगर, दिल्ली। 1984*
4. *आधुनिक काव्य– सम्पादक डॉ॰ हेतु भारद्वाज पंचशील प्रकाशन, जयपुर*
5. *गजानन माधव मुक्तिबोध कृत चांद का मुँह टेड़ा है। प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली। 2001*
6. *प्रफुल्ल कोलख्यान कृत मंजी हुई शर्म का जनतन्त्र 1997*
7. *दुष्यंत कुमार कृत ''साये में धूप'' प्रकाशक राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली। 2011*
8. *रघुवीर सहाय कृत 'आत्महत्या के विरूद्व' प्रकाशक राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली। 1967,*
9. *समर शेष है। रामधारी सिंह दिनकर*
10. *नागार्जुन प्रतिनिधि कविताएं संपादक नामवर सिंह, प्रकाशक राजकमल पेपरबैक प्रकाशन नई दिल्ली। संस्करण 1993*
11. *समकालीन साहित्य में धूमिल शगुन सिक्का Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika Vol-III* Issue-II* October 2015*

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-4* December- 2017
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

12. *धूमिल की कविता और परवर्ती हिन्दी कविता पर उसका प्रभाव कृष्ण बलदेवा सिंह राठौड़ द्वारा मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय उदयपुर में पी. एचडी हेतु प्रस्तुत थीसिस 2016*
13. *'कविताकोश' http://www.kavitakosh.org/kk//_ धूमिल*
14. *अनुभूति / सुदामा पाण्डेय धूमिल www.anubhuti-hindi.org/gauravgram/dhoomil/*
15. *प्रतिलिपि / pratilipi.in/2008/10/the-language-of-the-bullets-dhoomil/*
16. *सुदामा पाण्डेय धूमिल en.wikipedia.org/wiki/ Sudama_ Panday_'Dhoomil'*